संपादकीय जागरण

मंगलवार, 17 अप्रैल, 2018 : वैशाख शुक्ल 1-2 वि. 2075

सपने पुरुषार्थ से ही पूरे होते हैं

गुनहगार कौन

हैदराबाद की मक्का मस्जिद में विस्फोट मामले में राष्ट्रीय जांच एजेंसी यानी एनआइए की अदालत की ओर से सभी पांच आरोपितों को बरी किए जाने के बाद यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि आखिर इस मस्जिद में विस्फोट किसने किया? चूंकि अदालत ने यह पाया कि अभियोजन पक्ष आरोप साबित करने में नाकाम रहा इसलिए ऐसे सवाल भी उठेंगे कि क्या एनआइए ने अपना काम सही ढंग से नहीं किया? ऐसे सवालों के बीच इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि 11 वर्ष पुराने इस मामले की जांच में प्रारंभ में स्थानीय पुलिस ने हरकतुल जिहाद नामक आतंकी संगठन को विस्फोट के लिए जिम्मेदार माना और कुछ लोगों को गिरफ्तार भी किया, लेकिन इसके बाद जब मामला सीबीआइ के पास आया तो उसने हिंदू संगठनों के कुछ सदस्यों को अपनी गिरफ्त में लिया। इसी के साथ तत्कालीन सरकार की ओर से भगवा और हिंदू आतंकवाद का जुमला उछाल दिया गया। आज भले ही विपक्ष में बैठी कांग्रेस इससे इन्कार कर रही हो कि उसका इस जुमले से कोई लेना-देना नहीं, लेकिन सच यही है कि उसके नेताओं ने ही इस जुमले को उछाला था। क्या यह महज एक दुर्योग है कि आतंक के जिन मामलों और खासकर मालेगांव और अजमेर शरीफ दरगाह में विस्फोट को हिंदू आंतकवाद के उभार के तौर पर प्रचारित किया गया उनमें आरोपितों के खिलाफ लगे आरोप साबित नहीं हो सके? पहले मालेगांव एवं अजमेर मामले और अब मक्का मस्जिद मामले में आरोपित जिस तरह बरी हो गए उससे तो यही लगता है कि हिंदू आतंकवाद के जुमले को राजनीतिक फायदे के लिए गढ़ा गया और इस क्रम में जांच एजेंसियों का मनमाना इस्तेमाल भी किया गया।

इस पर हैरत नहीं कि एनआइए अदालत के फैसले के बाद भाजपा भगवा आतंकवाद के जुमले को लेकर कांग्रेस पर हमलावर है तो कांग्रेसी नेता इस जांच एजेंसी पर सवाल उठा रहे हैं, लेकिन तथ्य यह है कि आतंकवाद के मामलों में आरोपितों को सजा दिलाने के मामले में जांच एजेंसियों को पहले भी नाकामी मिली है। जर्मन बेकरी और साबरमती एक्सप्रेस में विस्फोट के आरोपित बरी हो चुके हैं। विडंबना यह है कि राजनीतिक दल ऐसे मामलों में अदालती फैसले की अलग-अलग तरह से व्याख्या करते हैं। कभी वे कहते हैं कि आखिरकार गलत तरीके से फंसाए गए लोगों को न्याय मिला और कभी वे सरकार एवं जांच एजेंसियों की नीयत पर सवाल उठाते हैं। बेहतर हो कि वे अपनी सुविधा अनुसार अदालती फैसलों की व्याख्या करना बंद करें और यह देखें कि जांच एजेंसियां और अधिक सक्षम कैसे बनें? यह ठीक नहीं कि अपने देश में आतंकी घटनाओं के आरोपितों का सबूतों के अभाव में बरी होने का सिलसिला कायम है। इस सिलसिले पर लगाम लगाने की जरूरत है, क्योंकि आतंकी घटनाओं में जान-माल का नुकसान काल्पनिक नहीं होता। यह एक तथ्य है कि मक्का मस्जिद विस्फोट में नौ लोगों की मौत हुई थी? क्या इनके परिजनों को न्याय मिलेगा? यह कहना कठिन है कि एनआइए के हाईकोर्ट जाने पर उसे क्या हासिल होता है, लेकिन यह ठीक नहीं कि आतंकी घटनाओं के मामले में न्याय कम और आरोप-प्रत्यारोप की राजनीति अधिक देखने को मिले।

सामंजस्य का प्रयास

प्रदेश में ग्राम स्वराज अभियान के माध्यम से नौकरशाही और जनप्रतिनिधियों के बीच सामंजस्य बैठाने का प्रयास शुरू किया गया है। सरकार और संगठन के समन्वय से इसकी शुरुआत हुई है। सत्तारूढ़ दल भारतीय जनता पार्टी के सांसदों और विधायकों की शिकायत रही है कि जिलों में तैनात अफसर सुनते नहीं हैं। केंद्र सरकार से जारी ग्राम स्वराज अभियान के कार्यक्रमों में राज्य सरकार की भी हिस्सेदारी तय है। कार्यपालिका और विधायिका के बीच समन्वय बनाने की रणनीति के तहत इन आयोजनों में सांसदों, विधायकों और पार्टी के नेताओं को उपस्थित रहना है। शासन ने जिन अफसरों को जवाबदेह बनाया है, उन्हें ही जनप्रतिनिधियों की मेजबानी करनी है। इसके साथ ही भाजपा संगठन के वरिष्ठ पदाधिकारियों को अलग-अलग कार्यक्रमों का समन्वयक बनाया है। मसलन, 18 अप्रैल को स्वच्छ भारत पर्व मनाया जाना है, 20 अप्रैल को उज्ज्वला पंचायत होनी है।

> सांसदों और विधायकों की शिकायत रही है कि जिलों में तैनात अफसर सुनते नहीं हैं

इसी तरह 24 अप्रैल को पंचायती राज दिवस मनाया जाएगा, 28 अप्रैल से 30 अप्रैल तक ग्राम स्वराज, शक्ति अभियान एवं आयुष्मान भारत अभियान के लिए समन्वयकों के नाम तय किए गए हैं। दरअसल, पिछले दिनों भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह राजधानी लखनऊ के दौरे पर आए थे। वहां उनसे जनप्रतिनिधियों ने शिकायत की कि जिलों में तैनात अफसर उनकी सुनते नहीं हैं। सांसदों और विधायकों के इस आग्रह को पार्टी नेतृत्व ने गंभीरता से लिया और कार्यपालिका एवं विधायिका के बीच मेलजोल के लिए कार्यक्रम तय कर दिए। साथ ही संगठन के वरिष्ठ पदाधिकारियों को इन कार्यक्रमों के समन्वय की जिम्मेदारी सौंप दी गई।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या सीरिया पर अमेरिकी हमला तीसरे विश्व युद्ध की आहट है?

आज का सवाल
क्या राष्ट्रमंडल खेलों में भारत का प्रदर्शन आपकी उम्मीदों पर खरा उतरा है?

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर **POLL** लिखें, स्पेस देकर **Y, N** या **C** लिखकर 57272 पर भेजें
Y -हां, **N**-नहीं, **C**-कह नहीं सकते

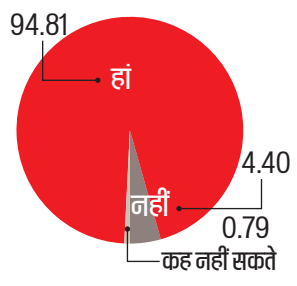

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।
सभी आंकड़े प्रतिशत में।

जम्मू से अलग दिल्ली के बोल

बलबीर पुंज

क्या कारण है कि जम्मू में भाजपा-कांग्रेस के नेता सीबीआइ जांच की मांग कर रहे हैं तो दिल्ली में इन्हीं दलों के प्रतिनिधि जम्मू से विपरीत भाषा बोल रहे हैं?

कठुआ में आठ साल की एक बच्ची के दुष्कर्म मामले को लेकर जो घटनाक्रम सामने आ रहा है उससे ऐसा लगता है कि मानो दिल्ली में 'लुटियंस लॉबी' और राजनीतिक प्रतिष्ठान अचानक नींद से जागे हों। क्या जम्मू-कश्मीर के कठुआ में एक बच्ची के साथ हुए संगीन अपराध को हिंदू-मुस्लिम चश्मे से देखा जाना चाहिए? जिस दरिंदगी के साथ इस आठ वर्षीय मासूम की हत्या हुई वह किसी भी सभ्य समाज में अस्वीकार्य है। कठुआ कांड के दोषियों को कड़ी सजा मिलनी ही चाहिए। इस संबंध में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का यह वक्तव्य देश की मूल भावना को प्रकट करता है कि बच्चियों के गुनहगार बख्शे नहीं जाएंगे, किंतु इस पूरी घटना में राजनीतिक प्रतिक्रियाओं से एक विचित्र बात उभरकर सामने आई है। दिल्ली में कठुआ सहित उन्नाव दुष्कर्म मामले के विरोध में 12 अप्रैल को इंडिया गेट पर कांग्रेस ने कैंडल मार्च निकाला जिसमें पार्टी अध्यक्ष राहुल गांधी सहित कई शीर्ष नेता शामिल हुए। प्रियंका वाड्रा और उनके पति रॉबर्ड वाड्रा भी इसका हिस्सा बने। केंद्रीय विदेश राज्यमंत्री वीके सिंह ने भावनात्मक ट्वीट करते हुए लिखा, 'मारी गई बच्ची के लिए हम इंसान के रूप में नाकाम रहे। जो लोग अपराधियों को धर्म की आड़ में शरण देना चाहते हैं, उन्हें यह पता होना चाहिए कि वे भी अपराधियों की ही श्रेणी में गिने जाएंगे।' इन्हीं दोनों राजनीतिक दलों के बोल, दिल्ली से 600 किलोमीटर दूर जम्मू आते-आते बदले हुए नजर आते हैं। कठुआ में पुलिस की जांच से असंतुष्ट स्थानीय हिंदू संगठन आंदोलित हैं। उनकी मांग है कि सीबीआइ इस मामले की जांच करे। ऐसी ही मांग आरोपितों के परिवार के लोग भी कर रहे हैं। इसी मांग को लेकर जम्मू बार काउंसिल के अध्यक्ष बीएस सलाठिया के नेतृत्व में सैकड़ों वकील सड़क पर प्रदर्शन करते हैं और आरोपपत्र दाखिल होने से रोकने का भी प्रयास करते है। सलाठिया राज्यसभा में कांग्रेस के नेता प्रतिपक्ष गुलाम नबी आजाद के मुख्य चुनावी एजेंट होने के साथ-साथ कांग्रेस से जुड़े रहे हैं। पीड़ित परिवार की अधिवक्ता डीएस राजावत ने सलाठिया पर धमकाने का आरोप भी लगाया है। जम्मू में भाजपा के नेता और राज्य सरकार में मंत्री लाल सिंह और चंद्र प्रकाश सिंह भी सीबीआइ से जांच कराने हेतु निकाली गई एक रैली में शामिल होते हैं, फिर कुछ दिन बाद मंत्री पद से इस्तीफा दे देते हैं। क्या कारण है कि जम्मू में भाजपा-कांग्रेस के नेता घटना की सीबीआइ जांच की मांग कर रहे हैं तो दिल्ली में इन्हीं दलों के प्रतिनिधि जम्मू से विपरीत भाषा बोल रहे हैं? क्यों दिल्ली और जम्मू में एक ही राजनीतिक दलों की भावनाओं में एकरूपता नहीं है? इस विरोधाभास का कारण क्या है?

क्या कठुआ मामले में गिरफ्तार आरोपियों को बचाने का प्रयास हो रहा है? जम्मू से लगभग 1,100 किलोमीटर दूर उन्नाव में दुष्कर्म की एक पीड़िता स्थानीय पुलिस की निष्पक्षता पर सवाल उठाकर सीबीआइ जांच की मांग करती है जिसके स्वीकार होने और न्यायिक हस्तक्षेप के बाद आरोपित विधायक गिरफ्तार भी हो जाता है।

अब यदि उन्नाव के मामले में सीबीआइ जांच की मांग उचित है तो फिर कठुआ के मामले में यह गलत कैसे हुई? इस पूरे घटनाक्रम से लगभग अनभिज्ञ स्वयंभू सेक्युलरिस्ट और उदारवादी-प्रगतिशील वर्ग तब तक नहीं चेता जब तक जम्मू में हिंदू संगठनों और वकीलों ने सीबीआइ जांच की मांग को लेकर प्रदर्शन नहीं किया। इस जमात ने घटनाक्रम से संबंधित तथ्यों को तोड़-मरोड़कर अपने अनुकूल एक ऐसा विमर्श तैयार किया जिसने सीबीआइ जांच की मांग को 'हिंदू बनाम मुस्लिम' बता दिया। इतना ही नहीं, सीबीआइ जांच की मांग आरोपितों को बचाने वाली मांग के तौर पर देखी गई। आखिर सीबीआइ जांच की मांग को सांप्रदायिक कैसे कहा जा सकता है? सवाल यह भी है कि क्या हत्या और दुष्कर्म की सभी घटनाओं में पीड़ित और अपराधी की पहचान वैसे ही उजागर की जाती है जैसे कठुआ के मामले में की गई?

वास्तव में स्वयंभू सेक्युलरिस्टों के लिए किसी भी अपराध की गंभीरता पीड़ित-आरोपी की मजहबी पहचान से निर्धारित होती है। जहां निर्भया की असली पहचान से देश कई महीनों तक अनजान रहा वहीं कठुआ में मासूम की मुस्लिम और आरोपियों की हिंदू पहचान को तुरंत क्यों सार्वजनिक कर दिया गया? कहीं इसीलिए तो नहीं ताकि मामले को हिंदू-मुस्लिम रंग दिया जा सके? सवाल यह भी है कि क्या जम्मू-कश्मीर में पहली बार किसी महत्वपूर्ण घटना को 'हिंदू बनाम मुस्लिम' दृष्टिकोण से देखा गया है? दिल्ली बनाम जम्मू के स्थानीय और राजनीतिक प्रतिष्ठानों की भाषा में अंतर्विरोध का एकमात्र कारण जम्मू-कश्मीर के अतीत में मिलता है। क्या यह सत्य नहीं कि बीते कई दशकों में जम्मू-कश्मीर में हर बड़ा सार्वजनिक निर्णय और साथ ही अपराध की हर बड़ी घटना को हिंदू-मुस्लिम चश्मे से ही देखा गया है?

क्या संविधान में धारा 370 को शामिल करने का कारण जम्मू-कश्मीर का मुस्लिम बहुल राज्य होना नहीं? 1980-90 के दशक में घाटी से करीब पांच लाख कश्मीरी पंडित अपनी पैतृक भूमि से पलायन के लिए इसलिए मजबूर हुए, क्योंकि वे मुस्लिम नहीं थे। उन्हें अपने पड़ोसियों, स्थानीय पुलिस, जिलाधिकारी और अन्य न्यायिक संस्थाओं से इसलिए सहायता नहीं मिली, क्योंकि उनका मजहब इसके आड़े आ रहा था। उसी दौरान जब घाटी में ऐतिहासिक मंदिरों को तोड़ा जा रहा था, पंडितों को उनके घरों से खदेड़कर गोलियों से भूना जा रहा था और उनकी महिलाओं के साथ दुष्कर्म किया जा रहा था-क्या तब कश्मीर का शेष समाज चुप नहीं रहा? क्या यह चुप्पी तब भी नजर आती जब पलायन करने वाले उन्हीं के समुदाय से होते? क्या यह सत्य नहीं कि सेना से मुठभेड़ के समय सीमापार से आए जिहादियों को इसलिए स्थानीय नागरिकों से सहायता आसानी से मिल जाती है, क्योंकि दोनों की मजहबी पहचान साझा है? यह भी किसी से छिपा नहीं कि कश्मीर में पुलिसकर्मी इसलिए निशाने पर रहते हैं, क्योंकि स्थानीय मुस्लिमों का एक वर्ग उन्हे भारत के प्रतिनिधि के तौर पर 'काफिर' मानता है। क्या यह सत्य नहीं कि वर्ष 2009 में रजनीश की श्रीनगर थाने में अमानवीय यातनाएं सहने के बाद मौत इसलिए हो गई, क्योंकि उसने एक मुस्लिम युवती से प्रेम-विवाह करने का साहस किया था? जिस प्रदेश में आतंकियों को बचाने के लिए स्थानीय लोग मजहब की आड़ में सुरक्षा बलों पर पथराव करते हों वहां के एक मामले में सीबीआइ जांच की मांग सांप्रदायिक कैसे हो गई?

दरअसल जम्मू-कश्मीर में सांप्रदायिक विकृति का बीजारोपण 1931 में तब हुआ जब शेख अब्दुल्ला अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पढ़ाई करके घाटी लौटे थे। जिस मजहबी बीज को शेख ने कश्मीर में अपने स्वार्थ के लिए अंकुरित किया, वह विषबेल बनकर दशकों पहले इस भूखंड की मूल संस्कृति को विस्मृत कर इस्लामी पहचान को स्थापित कर चुकी है। निः संदेह कठुआ की मासूम बच्ची को न्याय और दोषियों को कठोरतम दंड मिलना चाहिए, परंतु जब 70 वर्षों से जम्मू-कश्मीर में हर छोटे-बड़े मामले को हिंदू-मुस्लिम नजरिये से ही देखा गया हो तब यदि कठुआ मामले में भी ऐसा ही हो रहा है तब फिर आश्चर्य क्यों?

(लेखक राज्यसभा के पूर्व सदस्य एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

खेलों में कामयाबी का उदाहरण

मनोज जोशी

हरियाणा की आबादी देश की आबादी का केवल दो फीसद है, लेकिन राष्ट्रमंडल खेलों में उसने सबसे अधिक पदक दिलाए

कॉमनवेल्थ गेम्स में हमारे खिलाड़ियों के प्रदर्शन ने एक उम्मीद जगाने के साथ ही यह भी रेखांकित किया कि खेलों की दुनिया में देश का परचम और शान से फहराने के लिए अभी काफी कुछ करना है। यह काफी कुछ खेल मंत्रालय और खेल संगठनों के साथ राज्य सरकारों एवं स्कूलों को करना होगा। इस मामले में हरियाणा से सीख ली जा सकती है। इस पर हैरत नहीं कि अन्य अंतरराष्ट्रीय खेलों की तरह एक बार फिर हरियाणा के खिलाड़ियों ने कॉमनवेल्थ गेम्स में भी अपनी छाप छोड़ी। हरियाणा की आबादी देश की आबादी का केवल दो फीसदी है, लेकिन कॉमनवेल्थ गेम्स में उसने देश को 33 फीसदी पदक (9 स्वर्ण, 6 रजत, 7 कांस्य) दिलाए। महाराष्ट्र दूसरे (5-2-1), तेलंगाना तीसरे (4-1-2), दिल्ली चौथे (3-1-2) और मणिपुर पांचवें (3 स्वर्ण) स्थान पर रहे। इसके बाद पंजाब और उत्तर प्रदेश का नंबर आया। यूपी आबादी के लिहाज से सबसे आगे है, लेकिन पदकों के लिहाज से वह नौवें नंबर पर रहा। पंजाब का खेलों में पिछड़ना सवाल खड़े करता है। लगता है इस राज्य में अब खेल संस्कृति को वैसा बढ़ावा नहीं मिल रहा जैसा पड़ोसी राज्य हरियाणा में मिल रहा है। बेहतर होगा कि अन्य राज्य हरियाणा से प्रतिस्पर्धा करें।

जिस मध्य प्रदेश और ओडिशा के मुख्यमंत्री खेलों में काफी रुचि लेते हैं वहां के खिलाड़ी भी खाली हाथ रहे। इसी तरह जम्मू-कश्मीर, छत्तीसगढ, झारखंड समेत कुछ प्रांतों के नसीब में भी कोई पदक नहीं आया। आम धारणा है कि हरियाणा के खिलाड़ी केवल दमखम वाले खेलों यानी पॉवर गेम में ही महारत रखते हैं, लेकिन कॉमनवेल्थ गेम्स में यहां के खिलाड़ियों ने निशानेबाजी में भी तीन स्वर्ण पदक जीतकर सबको चौंकाया। 16 साल की मनु भाकर ने दस मीटर एयर पिस्टल, 15 साल के अनीश ने 25 मीटर रैपिड फायर पिस्टल और संजीव राजपूत ने 50 मीटर राइफल-3 पोजीशन में स्वर्ण पर निशाना लगाया। अनीश पहले पेंटाथलान जैसी मुश्किल स्पर्धा में भाग्य आजमा रहे थे। बाद में उन्होंने शौकिया इस खेल में भाग लिया और जूनियर वर्ल्ड रिकॉर्ड बनाकर सबको अपना मुरीद बना लिया। अनीश और मनु के अलावा दिल्ली की 22 साल की मनिका बत्रा दो स्वर्ण और एक रजत एवं एक कांस्य पदक जीतकर नई सनसनी बनीं। वह टेबिल टेनिस में महिला सिंगल्स का खिताब जीतने वाली पहली भारतीय महिला बनीं। उन्होंने ओलंपिक पदक विजेता और दुनिया की नंबर चार खिलाड़ी सिंगापुर की फेंग तिआनवेई को हराकर बड़ा उलटफेर किया। भाला फेंक में नीरज चोपड़ा भी एक उम्मीद बनकर उभरे। इसके अलावा इस बार मुक्केबाजी में तीन और टेबल टेनिस में दो स्वर्ण पदक

हासिल हुए। ध्यान रहे कि पिछली बार इन खेलों में एक भी स्वर्ण पदक हासिल नहीं हुआ था। इसका मतलब है कि हमारे खिलाड़ी उन खेलों में भी आगे बढ़ रहे जिनमें पहले निराशा हाथ लगती थी, लेकिन यह ठीक नहीं रहा कि हॉकी में भी भारत की झोली खाली रही। दरअसल भारतीय महिला हॉकी टीम के कोच मारिन शोर्ड को पुरुषों की और लड़कों का जूनियर विश्व कप जीतने वाली टीम के कोच हरेंद्र सिंह को महिला टीम की कमान देने का फैसला समझ नहीं आया। यह पहेली सुलझाई जानी चाहिए।

इसके साथ ही इस सवाल का जवाब भी दिया जाना चाहिए कि आखिर लगातार अच्छे परिणाम दे रहे अल्टमस की कोचिंग में क्या कमी थी? वह पाकिस्तान टीम के साथ जुड़ गए और हमारी तमाम रणनीतियों की बारीकियों से पाकिस्तानी वाकिफ हो गए। अल्टमस के कोच रहते भारत ने पाकिस्तान को छह बार हराया था। इस बार भारतीय टीम उनके बिना पाकिस्तान को नहीं हरा पाई। हालांकि नए कोच मारिन की यह सोच गलत नहीं कि उन्होंने दो साल बाद टोक्यो में होने वाले ओलंपिक खेलों को ध्यान में रखते हुए जूनियर वर्ल्ड कप जीतने वाली टीम के कई खिलाड़ियों को अवसर दिए, लेकिन गोल्ड कोस्ट में टीम को और आगे तक जाना चाहिए था। महिला हॉकी टीम की 2002 के कॉमनवेल्थ गेम्स की कामयाबी पर ही फिल्म चक दे इंडिया बनी थी, लेकिन अब उसी टीम के प्रदर्शन में निरंतरता की कमी साफ दिखाई दी। इस टीम ने ओलंपिक चैंपियन इंग्लैंड को लीग में तो हरा दिया, लेकिन कांस्य पदक के मुकाबले में इंगलैंड से ही छह गोल खा बैठी।

वेटलिफ्टिंग में इस बार ज्यादा कड़ी प्रतियोगिता नहीं थी। कई स्पर्धाओं में तो भारतीय खिलाड़ियों की प्रतिस्पर्धा खुद से थी। ऐसे में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर पाना आसान नहीं होता, लेकिन मीराबाई चानू ने विश्व चैंपियनशिप से भी बेहतर प्रदर्शन करके साबित कर दिया कि उनकी तैयारी सही मायने में एशियाई खेलों के लिए है। एथलेटिक्स में मोहम्मद अनस याहिया बेशक 400 मीटर की दौड़ में कोई पदक नहीं जीत पाए,लेकिन उनका प्रदर्शन दो लिहाज से अहम रहा। एक, उन्होंने अपने राष्ट्रीय रिकॉर्ड को और सुधारा और दो 1958 के कार्डिफ राष्ट्रमंडल खेलों के बाद पहली बार कोई भारतीय इस दौड़ के फाइनल में दौड़ता दिखाई दिया। अनस ने अपना बेस्ट देने के अलावा न सिर्फ जमैका के दो एथलीटों को पीछे छोड़ा, बल्कि आखिरी पांच मीटर में पांचवें से चौथे स्थान पर पहुंचकर अपनी अच्छी फिनिशिंग का भी परिचय दिया। अगर हाई जंपर तेजस्विन और तैराकी की नई सनसनी श्रीहरि अपने राष्ट्रीय रिकॉर्ड तक भी नहीं पहुंच पाए तो इसका मतलब है कि मनोवैज्ञानिकों को उनके साथ लंबी अवधि तक काम करने की जरूरत है। तैराक साजन प्रकाश और वीरधवल खाड़े अपने देश में फिसड्डियों के बीच अभ्यास करके उस स्तर तक नहीं पहुंच सकते जितनी उनमें क्षमताएं हैं। उन्हें ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका में नियमित अभ्यास की जरूरत है। निःसंदेह जरूरत इसकी भी है कि हम अपने अन्य खिलाड़ियों को भी विश्व स्तरीय सुविधाएं दें और वह भी देश के विभिन्न हिस्सों में। इसके अलावा विभिन्न खेलों में खिलाड़ियों की नई पौध तैयार करने की भी जरूरत है-ठीक वैसे ही जैसे बैडमिंटन में गोपीचंद ने तैयार की है।

कड़ी प्रतियोगिता के अभाव में कुश्ती में पुरुष पहलवानों का प्रदर्शन अच्छा रहा, लेकिन महिलाओं में केवल विनेश फोगट ही पूर्व विश्व चैंपियन को हरा पाईं। बेशक भारत को पांच स्वर्ण पदक मिले, लेकिन भारतीय पहलवानों का रुख कई सवाल उठाता है। इनके साथ ही उन सवालों का भी जवाब खोजा जाना चाहिए जो गोल्ड कोस्ट में 66 पदकों के साथ उभरे हैं और जिनसे हमारे खेल प्रशासक अनभिज्ञ नहीं हो सकते। बैडमिंटन में स्वर्ण पदक जीतने वाली साइना को जिस तरह अपने पिता को सुविधाएं दिलाने के लिए लड़ना पड़ा वह अच्छा नहीं रहा। इसी तरह यह भी ठीक नहीं रहा कि हमारे खिलाड़ियों को कोई यह बताने वाला भी नहीं था कि इंसुलिन के लिए सीरिंज का इस्तेमाल नहीं करना है।

(लेखक खेल पत्रकार एवं कमेंटेटर हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

अध्यात्म और विज्ञान

अध्यात्म एक वृहद विषय है। यह भारतवर्ष की सदियों से चली आ रही अक्षुण्ण संपदा है। जो भी इसका अनुभव कर लेता है, उसे संसार की अन्य संपदाएं फीकी लगती हैं। अलग-अलग ग्रंथों, अलग-अलग पंथों और अलग-अलग उपासना पद्धतियों के होने के बावजूद इस देश का आध्यात्मिक वैभव सदैव समृद्ध रहा है। यह वही देश है, जिसने विचार भेद को स्वस्थ शास्त्रार्थ की बहस के रूप में परिवर्तित किया। आज ऐसी अनेक चर्चाएं सुनने को मिलती हैं, जिनमें लोग आध्यात्मिक संपदा को भौतिक संपदा के सामने तुच्छ साबित करने का प्रयास करते हैं, परंतु यह समझना आवश्यक है कि अध्यात्म विज्ञान की कसौटी पर भी उतना ही खरा है जितना कि उसे होना चाहिए। बस आवश्यकता है तो हर विषय पर गहन अध्ययन, चिंतन और मनन की। जो अनुसंधान आज विज्ञान कर रहा है, उनमें से कई शोधों से पता चलता है कि देश के ऋषि-मुनि उन पर अनेक शताब्दियों पहले ही शोध कार्य कर चुके थे। आचार्य पतंजलि ने योगसूत्र के रूप में और कणाद जैसे ऋषियों ने परमाणु दर्शन का सिद्धांत प्रस्तुत किया। आज हम आणविक युग में जी रहे हैं। हमारे वैदिक धर्मग्रंथों में अध्यात्म के माध्यम से जो संपदा हमें मिली है, यह अमूल्य है। आवश्यकता है तो उसे सही तरीके से जानने और समझने की।

विज्ञान भौतिक पदार्थों तक सीमित है, लेकिन अध्यात्म इससे काफी आगे का विषय है। मन, बुद्धि और विवेक इसके आयाम हैं। यदि हम अपने धर्मग्रंथों का गहन अध्ययन करें तो स्वभावतः कई अनसुलझे प्रश्नों का सहज ही समाधान प्राप्त हो जाता है, परंतु अफसोस है कि आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों की कमी के कारण आज की युवा पीढ़ी दिग्भ्रमित है। वह एक ऐसे दोराहे पर खड़ी है, जहां से उसे दिशा का बोध नहीं होता। आज की शिक्षा संस्कार विहीन होती जा रही है। यदि हमें एक उन्नत राष्ट्र की परिकल्पना पुनः साकार करनी है तो अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय स्थापित करना होगा। अपनी नीतियों में परिवर्तन करना होगा। पढ़-लिखकर भी आध्यात्मिक मूल्यों को समझना होगा। कुछ पुस्तकों को मात्र पढ़ लेने से ही हम ज्ञानी नहीं बन जाते हैं। जब तक कि उन्हें हम अपने दिन-प्रतिदिन की जीवनचर्या में न ढालें।

आचार्य अनिल वत्स

पाठकनामा

pathaknama@nda .jagran.com

सोशल मीडिया का फर्जीवाड़ा

सोशल मीडिया का शरारती स्वरूप शीर्षक से लिखे अपने लेख में एनके सिंह ने सोशल मीडिया के नकारात्मक दृष्टिकोण को उजागर किया है। वाट्सएप, फेसबुक जैसे सोशल मीडिया संचार के ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा किसी भी सूचना को पलभर में दुनिया के किसी भी कोने में पहुंचाया जा सकता है। विश्व की एक बड़ी आबादी सोशल मीडिया पर सक्रिय रहती है। आज की जनता इतनी जागरूक है कि सही और फर्जी सूचनाओं में अंतर करना जानती है। मगर जब बात जाति या धर्म की हो तो लोगों में भावनात्मकता प्रबल हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें सही और गलत में फर्क नजर नहीं आता। इसी कारण वे झूठ को भी सच समझ बैठते हैं जिसके चलते उनमें एक द्वंद्व पैदा हो जाता है, हिंसा की प्रवृत्ति जाग उठती है। चूंकि फेक न्यूज जल्दी वायरल हो जाती है, इसलिए कुछ विशेष वर्ग इससे कमाई करने के उद्देश्य से भी झूठी खबरों की झड़ी लगा देते हैं, लेकिन वे यह नहीं सोचते की उनकी इस नादानी से अराजकता का माहौल पैदा हो जाता है जिसके चलते बहुत से लोग हिंसा के शिकार हो जाते हैं और देश में अशांति का माहौल पनपता है। सोशल मीडिया के जरिये अच्छी और सच्ची खबरों को पहुंचाकर देश को सकारात्मकता और मजबूती प्रदान की जा सकती है।

सौरभ पाठक, ग्रेटर नोएडा

गुलाबी भी बना काला

बैंकों की मार्च 2018 की एक रिपोर्ट के अनुसार 2000 के नोट करेंसी चेस्ट में 90 प्रतिशत आने बंद हो गए हैं। केवल 10 प्रतिशत नोट ही आ रहे हैं। मतलब सारा गुलाबी धन काले कुबेरों की काल कोठरी में समा गए हैं। जब देश का काला धन ही सरकार देश में से नही निकाल पा रही है तब विदेशों में जमा काला धन वो कैसे ला पाएगी ? काले धन के संग्रहकर्ताओं के हौसले बुलंद हैं कि नोटेबंदी के बावजूद उन्होंने अपना काला धन नए काले धन में बदल लिया, यानी भ्रष्टाचारियों ने सरकार के निर्णय की काट निकाल ली।

mahesh_nenava@yahoo.com

सीरिया में तनाव

जिस प्रकार से सीरियाई राष्ट्रपति बशर अल-असद ने अपने ही देश की जनता के खिलाफ रासायनिक हमले करवा के निर्दोष लोगों का नरसंहार करवाया, यह कहीं से भी सीरिया के भविष्य के लिए ठीक नही है। सीरिया में इंसानियत का गला घोंटा गया जिसके कारण इस रासायनिक हमले में सैकड़ो लोग मारे गए थे, जिसमें बहुतायत बच्चे थे। यह बहुत ही दुःखद घटना थी, लेकिन इस रासायनिक हमले की जिम्मेदारी सीरियाई राष्ट्रपति नहीं ले रहे। इस मामले को लेकर दुनिया के कुछ देशों के आमने-सामने आने से स्थिति बेहद तनावपूर्ण हो गई है।

नीरज कुमार पाठक, नोएडा

दलित सुधार

राजीव सचान ने अपने लेख, दलित हितैषी दिखने की दौड़, में बड़े सार्थक ढंग से राजनैतिक दलों की विवशता का उल्लेख किया है। उनके विचार से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी दल वास्तव में दलित सुधार को प्रतिबद्ध नही है, बल्कि उनके वोटों को पाने की चाहत में अनेक प्रकार के प्रपंच करके समाज को भ्रमित कर रहे हैं। राजनेताओं में राष्ट्र सर्वोपरिता का भाव न होने के कारण देशवासियों को धर्म व जाति आधारित विभिन्न वर्गों में विभाजित करके उनका उपयोग स्वार्थ हितार्थ ही रहता है। यह दुःखद है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में सभी राजनैतिक दल मुस्लिम समुदाय व दलित समाज के संगठित मताधिकार कोष को अपने-अपने पक्ष में भुनाने के लिए बड़े बैचेन रहते हैं, परंतु उनके पिछड़ेपन को दूर करने के लिए पर्याप्त उपाय करने में सहायक नही होते। विनोद कुमार सर्वोदय, गाजियाबाद

शिक्षकों की उपेक्षा

शिक्षक का पेशा दुनिया में सबसे ज्यादा आदर्श व आदरणीय माना जाता है। ऐसी बातें वेदों व शास्त्रों में भी कही गई हैं, परंतु क्या इन बातों को आज हम अहमियत देते हैं या ये सिर्फ कहावतों में ही सिमट गई हैं? आज यह बड़े ही दुःख का विषय है कि जिन शिक्षकों को कक्षाओं में छात्रों के भविष्य निर्माण करने की जिम्मेदारी होती है वो सड़कों पर अपने अधिकारों की मांग उठाने के लिए मजबूर हैं। अक्सर देखा गया है कि भारत के किसी न किसी राज्य में शिक्षकों के समूह अपनी नौकरियों से जुड़े विभिन्न मसलों को लेकर आवाज उठाते रहते हैं। मगर हालात जस के तस बने हुए हैं या यों कहें कि भारत के शिक्षा विभाग ने उनकी बातों को कभी भी प्राथमिकता देने की कोशिश नहीं की। इसका प्रतिकूल प्रभाव हमारी शिक्षा व्यवस्था पर साफ तौर पर देखा जा सकता है। बिडंबना तो यह है कि कहीं-कहीं वर्षों से न तो शिक्षकों की भर्ती निकली है और न ही पदस्थ शिक्षकों को समय पर वेतनमान मिल पा रहा है। इन्हीं समस्याओं को लेकर कुछ समय पहले देश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में से एक दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षक संघ ने मार्च निकाला था। इसके अलावा मप्र के शिक्षको ने भी अपनी मांगो को लेकर विधानसभा भवन के सामने प्रदर्शन किया था, परन्तु संबंधित विभाग या सरकार पर कोई असर नहीं पड़ा। शिक्षकों की समस्याओं को नजरअंदाज करना कहीं से भी उचित नहीं है। इनकी मांगों पर सरकार का ध्यान जाना चाहिए, क्योंकि जिनके कंधों पर राष्ट्र निर्माता अर्थात छात्रों को सजोने संवारने की जिम्मेदारी है वो किसी भी जिम्मेदारी को तभी निभा पाएंगे जब उनका पेट भरेगा और इसके लिए सरकारों के वादे की नहीं, बल्कि उनके हित में किए गए वास्तविक कामों की द